20

अंक २०

ॐ

संस्कृत पाठ माला ।

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

भाग वीसवाँ ।

लेखक और प्रकाशक,
श्रीपाद दामोदर सातबळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

प्रथम वार.

संवत् १९८४, शक १८४९, सन१९२७

मूल्य पांच आने

स्वरचिन्ह ।

वेदमें अक्षरों के नीचे और ऊपर स्वरचिन्ह दिये जाते हैं उन को स्वर कहते हैं। इन स्वरोंके कुछ नियम इस पुस्तक में दिये हैं। यदि पाठक इन नियमोंको ध्यानसे पढेंगे तो उनको स्वर किस नियमसे दिये जाते हैं और स्वर कैसे बदलते हैं इस बातका पता लग जायगा। स्वरका प्रकरण बडा लंबा चौडा है, परंतु इस भागको संक्षेप से यहां दिया है। इसलिये इसके मनन से पाठक स्वरके विषयकी आवश्यक बात समझ सकते हैं।

लेखक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल

औंध (जि. सातारा)
२०।११।२७

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

ॐ

संस्कृत-पाठ-माला ।

भाग बीसवाँ ।



पाठ १

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये-

(१)

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥

यजु. ३६ । २०

हे ईश्वर ! (हरसे) दुष्टताका हरण करनेवाले, (शोचिषे) पवित्रता बढानेवाले और (अर्चिषे) तेज फैलानेवाले (ते नमः, ते नमः) तेरे लिये हमारा नमस्कार (अस्तु) है । (ते हेतयः) तेरे शस्त्र (अस्मत् अन्यान्) हमको छोडकर अन्य अर्थात् धर्म के शत्रुओंको (तपन्तु) ताप देते रहें । (पावकः) पवित्रता करने वाला तू ईश्वर (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (शिवो भव) कल्याण कारी होवे ॥

परमेश्वर दुष्टता दूर करने वाला, पवित्रता बढाने वाला और प्रकाश को फैलाने वाला है, इसलिये उसको ही नमन करना हम

सबको उचित है। हरएक मनुष्य उसीकी पूजा करे। हम सबका आचरण ऐसा धर्म नियमों से युक्त होवे कि जिससे हमपर ईश्वर का शासक दण्ड न गिरे, वह दण्ड उनपर गिरे कि जो अधर्माचरण करते हों। पवित्रता बढाने वाले ईश्वर की दया हम सब पर बरसती रहे।

(२)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥ यजु. ३६।२१

हे ईश्वर! (विद्युते ते नमः अस्तु) विशेष तेजःस्वरूप तेरे लिये हमारा नमस्कार हो। (स्तनयित्नवे ते नमः) महान शब्द करने वाले तेरे लिये मेरा नमस्कार हो। हे (भगवन्) ऐश्वर्य संपन्न ईश्वर! (यतः) जिस स्थानसे तू (स्वः) अपने निजानंद में (सं ईहसे) सम्यक् चेष्टा करता है, वहां (ते नमः अस्तु) तेरे लिये मेरा नमस्कार हो॥

ईश्वर परम तेजस्वी है, महान ऐश्वर्य संपन्न है और शब्दका प्रवर्तक भी है तथा वह अखंड आनंदमय है। इसलिये उसको नमस्कार करना चाहिये। उसी की पूजा करनी चाहिए। और उसी की भक्ति करनी चाहिये।

(३)

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ यजु. ३६।२२

हे ईश्वर! (यतः यतः) जिस जिस स्थानसे तू (सं ईहसे) प्रेरणा करता है (ततः) उस उस स्थानसे (नः अभयं कुरु) हम सबका अभय कर। (नः प्रजाभ्यः) हमारी सब प्रजाओं के लिये (शं अभयं) कल्याणकारक अभय (कुरु) कर और (नः पशुभ्यः) हम सबके पशुओं के लिये भी अभय दान कर

ईश्वर हम सबको अभय देवे, हमारी प्रजाओं और हमारे पशुओंको भयरहित करे अर्थात् हम सबका पूर्ण कल्याण करे। वह तो सब प्रकार से कल्याण करता ही है। परंतु यहां यह प्रार्थना है। इस प्रकार की प्रार्थना मनुष्य करें और उसकी निर्भयतामें सदा रहें।

(४)

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

अथर्ववेद ११। २। १६

(भवाय) सबके उत्पादक ईश्वर के लिये और (शर्वाय) सबका दुःख निवारण करने वाले ईश्वर के लिये सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रीके समय और दिनके समय (नमः अकरं) नमस्कार करते हैं।

दिनमें प्रातःकाल, दोपहरके समय, सायंकाल और रात्रीमें सोते समय ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना भक्तिसे और प्रेम से करनी चाहिए।

(५)

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्॥

ऋग्वेद १। ८४। १२

(स्वराज्यं अनु वस्वीः) स्वराज्य प्राप्तिके अनुकूल व्यवहार करने वाले (ताः प्रचेतसः) वह ज्ञानी जन (अस्य सहः) इस ईश्वरकी शक्तिका (नमसा सपर्यन्ति) नमस्कारोंसे पूजन करते हैं। तथा (अस्य पुरूणि व्रता) इसके विविध नियमों का (सश्चिरे) पालन करते हैं इसलिये कि उससे (पूर्व चित्तये) अपूर्व लाभ प्राप्त हो।

अपना अभ्युदय चाहने वाले सब लोक परमेश्वर की शक्तियों का, उसके महान कर्मोंका और उसके अनंत यश का चिंतन करें और अपनी भक्तिसे उस की पूजा करें। ऐसा करने से ही उनको अपूर्व लाभ प्राप्त हो सकता है।

(६)

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात्पात्वंहसः॥

अथर्ववेद. ६। ४५। २

हे (इन्द्र) प्रभो! हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन्! (यत्) यदि (अपि मृषा चरामसि) असत्य आचरण हमसे हुआ हो, (दुरितात् अंहसः) तो उन सब पापोंसे (आंगिरसः प्रचेताः) विशेष ज्ञानी विद्वान् (नः पातु) हमको बचावे।

इस जगत् का एक ही प्रभु है वह सर्वज्ञ है, वही सबसे श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। कोई भी मनुष्य उस से छिपकर कोई पाप कर नहीं सकता। इस लिये सबको उचित है कि वे उस ईश्वर की भक्ति करें और श्रद्धासे उसकी प्रार्थना करें कि वह हम सबको ऐसी प्रेरणा करें कि हमसे कभी बुरा आचरण न हो और हम सब सदा पापसे बचते रहें।

सूचना।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके शब्दोंका अर्थ करें और शब्दार्थ के अनुसार मनन करके मंत्रका भावार्थ देखें। छोटेसे मंत्र का भी भावार्थ बडा गंभीर हो सकता है, क्यों कि भावार्थ में एक एक शब्दके आशय का स्पष्टीकरणके साथ तात्पर्य लेना होता है। इस ढंगसे अभ्यास करनेसे पाठकों को बडा लाभ होगा।

पाठ २

वैदिक स्वर ।

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥

शिक्षा. ११

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन स्वर हैं और उच्चारण के लघुदीर्घ भेद से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत ये भी तीन भेद होते हैं ।

इनमें उदात्त अनुदात्त और स्वरित ये स्वरके भेद ऊपर नीचेके आघात के कारण बनते हैं और न्यून अधिक काल लगने के कारण ह्रस्व दीर्घ प्लुत होते हैं।

ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऋ, ऌ ।
दीर्घ स्वर--आ, ई, ऊ, ॠ, ०, ए, ऐ, ओ, औ ।

ह्रस्व स्वरका काल एक, दीर्घस्वर का काल दो और प्लुत स्वरका काल तीन मात्रा होता है। अर्थात् ह्रस्व स्वर ही दो गुणा लंबा करनेसे दीर्घ और दीर्घ स्वर और अधिक बढाने से प्लुत बनता है । देखिये—

ह्रस्व - हे राम- ।
दीर्घ - हे रामाऽ-ऽ- ।
प्लुत - हे रामा ऽ-ऽ-ऽ- ।

एक ही अकार दो गुणा और तीन गुणा लंबा करने से दीर्घ और प्लुत क्रमशः होता है । इसी प्रकार अन्य स्वरोंके विषयमें समझना योग्य है ।

दूसरे भी कारणों से ऱ्हस्व स्वर को दीर्घत्त्व अथवा गुरुत्त्व प्राप्त होता है, उसके कारण ये हैं—

१ यदि ऱ्हस्व स्वर अनुस्वार युक्त होगा तो वह दीर्घ या गुरु समझा जाता है। जैसा- रामं, इसमें अन्त्य अकार गुरु है।

२ यदि ऱ्हस्व स्वर विसर्ग युक्त हो तो वह गुरु समझा जाता है। जैसा— रामः, इसमें विसर्ग पूर्व का अकार गुरु है।

३ संयुक्त अक्षरके पूर्व का ऱ्हस्व स्वर दीर्घ या गुरु माना जाता है जैसा इन्द्र, इसमें न्द्र अक्षर आगे आनेके कारण इसके पूर्व ऱ्हस्व इ कार दीर्घ या गुरु माना जाता है।

४ इस नियममें अपवाद = प्र और ऱ्ह इन दो संयुक्त अक्षरोंके पूर्व का ऱ्हस्वस्वर विकल्पसे दीर्घ समझा जाता है अर्थात् उसको ऱ्हस्वस्वर भी कह सकते हैं और आवश्यकता होनेपर दीर्घ भी कह सकते हैं।

५ पद्य में चरणके अंतमें यदि ऱ्हस्व स्वर आगया तो वह दीर्घ सदृश समझा जाता है।

इस प्रकार ऱ्हस्व स्वर भी परिस्थितिके अनुसार दीर्घवत् समझे जाते हैं। ऱ्हस्वकी एक मात्रा, दीर्घ की दो मात्रा और प्लुत की तीन मात्राएं होती हैं। छंदकी रचना करने केलिये इन मात्राओं की गिनती करने की आवश्यकता होती है।

दूसरेको पुकारनेके समय प्रायः प्लुत स्वरका उच्चारण होता है। जैसा—हे रामा ऽ-ऽ-ऽ! ऱ्हस्व तथा दीर्घ स्वरोंके प्रयोग शब्दोंमें सर्वत्र होते हैं। ऱ्हस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरोंका उच्चार केवल स्वरोच्चारके कालकी लंबाई के साथ संबंधित है, यह बात यहां पाठकोंके मनमें आगई होगी।

इससे पूर्व यह बताया ही है कि स्वरोंके उच्चनीच और संयुक्त आघात से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर होते हैं, अर्थात् ये स्वर आघात के हैं। वैदिक भाषा इस समय प्रचलित नहीं है, इस लिए इन आघातोंका वास्तविक स्वरूप हम जान नहीं सकते। तथापि प्रायः संपूर्ण भाषाओंमें न्यूनाधिक प्रमाणसे ये आघात रहते ही हैं। अंग्रेजी भाषामें शब्दोंके विशेष स्वराक्षर पर दबाव होता है और कईयोंपर नहीं होता है। भाषामें भी वैसा ही है। देखिये- " यह बात ऐसी हो है। " इसमें " ही " पर आघात या दबाव है प्रायः ये दबाव भिन्न भिन्न भाषामें भिन्न भिन्न रीतिसे होते हैं। परंतु होते हैं इस में संदेह नहीं है।

वेदमंत्रोंमें ये आघात अथवा दबाव अक्षरोंके नीचे और ऊपर खडी या तेढी लकीरोंसे बताये जाते हैं,तथा अन्य चिन्ह भी बहुत ही रहते हैं जो वाजसनेयी संहिताके मंत्रोंमें प्रसिद्ध हैं। देखिये-

पुवित्रैस्त्थोवैष्ण्व्यौसवितुर्वः÷प्रसुवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेणपुवित्रेणसूर्य्यस्यरश्मिभिः÷ ॥ देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोग्रंऽइममद्ययज्ञन्नयतारग्रेयज्ञपतिर्ः सुधातुंयज्ञपतिन्देवयुवंम ॥ १२ ॥

इसमें पाठक देख सकते हैं कि स्वरोच्चार करने के कितने चिन्ह इसमें लिखे गये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्व वेद मंत्रोंके उच्चारके चिन्ह भिन्न भिन्न ही होते हैं, परंतु यहां सब स्वरोंका विचार करना नहीं प्रत्युत है, केवल उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वर चिन्होंका ही विचार करना है। ये स्वर चिन्ह महत्त्व के हैं और अन्य चिन्ह गौण हैं।

इन वैदिक स्वरोंका उच्चारण भिन्न भिन्न रीतिसे होता है। अर्थात् उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरोंका उच्चार भिन्न भिन्न रीतिसे होता है। और यदि इन स्वरोंके उच्चारण में अशुद्धि हुई तो अर्थका अनर्थ भी होता है। इस लिये वेदोच्चार करने के लिये इन स्वरोंके ठीक ज्ञान होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋ. १।१।१

यह मंत्र देखिये। इसमें कई अक्षरों के नीचे रेषा है, कईयों के सिर पर रेषा है और कई अक्षर इस प्रकार की रेषाओंसे रहित हैं। ये स्वर चिन्ह ऐसे क्यों आते हैं और इसका इन अक्षरोंसे क्या संबंध है यह अब देखना है।

यदि पाठक इस विषयके लेख आगेके पाठोंमें विशेष ख्याल से पढेंगे तो उनको इस विषयका आवश्य ज्ञान हो जायगा। इस लिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस स्वरबोधक पाठोंका अध्ययन विशेष मनन से करें और लाभ उठावें।

पाठ ३

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिए—

(१)

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य।
ऋग्वेद १।३६।१५

हे (बृहत्-भानो) विशेष तेजस्वी! हे (यविष्ठ्य) बलवान् (अग्ने) प्रकाशके देव ईश्वर! (नः) हम सबको (रक्षसः)

राक्षसोंसे (पाहि) बचाओ। (धूर्तेः अ-रात्रणः) धूर्त स्वार्थियों से (पाहि) बचाओ। (जिघांसतः) हनन करनेवाले शत्रुसे (उत वा) तथा (रीषतः) विनाश करनेवाले शत्रुसे (पाहि) हम सबको बचाओ।

हे ईश्वर ! तू हम सबका बचाव क्रूर, राक्षस, दुष्ट, धूर्त, स्वार्थी आदिसे कर। तूही सबमें समर्थ, सबको तेज देनेवाला सबका प्रेरक देव है। इसलिये हम सबको अपने बचाव करनेके लिये समर्थ बनाओ और हमें तेजस्वी तथा यशस्वी कर।

(२)

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥

ऋग्वेद. १।५१।८

हे ईश्वर ! (आर्यान् विजानीहि) अर्योंको अर्थात् सत्य धर्मीयों को जान लो और (ये च दस्यवः) जो चोर हैं और घातक तथा हिंसक हैं उनको भी जान लो। (बर्हिष्मते) सत्कर्म करने वाले के लिये (अ-व्रतान्) नियम तोडनेवालों को (शासत् रंधय) शासन करते हुए दण्ड दो। तू (शाकी भव) समर्थ है। तथा तू (यजमानस्य चोदिता) कर्मण्य पुरुष को प्रेरणा करने वाला है (ते) ये (ता विश्वा) वे सब कर्म मैं (सधमादेषु) आनंद प्राप्तिके पुरुषार्थमें (चाकन) चाहता हूं।

हे ईश्वर ! हम सबमें जो सच्चे धर्मात्मा हैं और जो दुराचारी अधार्मिक हैं तथा नियमविरुद्ध आचरण करने वाले हैं उन सबको देख लो! जो सज्जन हैं उनकी रक्षा कर और जो दुर्जन हों उनको दण्ड दो। तू ही यह सब कर्म करने के लिये समर्थ है। तू ही सब को पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देता है और तुम्हारे ही कर्म हम सबको आनंद बढाने के कार्य में सहायकारी होते हैं, इसलिये हम सब

यह प्रार्थना कर रहे हैं।

ऐसे मंत्र मनुष्योंको भी धर्म के नियम बताते हैं इस लिये इन से जो बोध लेना उचित है वह यहां बताया जाता है—

(१) मनुष्य प्रथम सज्जन कोन हैं और दुर्जन कौन हैं इस का विचार करे, (२) उनमें पुरुषार्थी कौन हैं और नियम तोडने वाले कौन हैं यह देखे, (३) पश्चात् सज्जनों की रक्षा करे और दुर्जनों को दण्ड देवे, (४) अपना सामर्थ्य बढावे, (५) सत्कर्मी पुरुषार्थीयोंकी सहायता करे, (६) इस प्रकार व्यवहार करके जगत् में उन्नतिको प्राप्त हो।

इन आशयोंको प्रकट करने वाले इस मंत्र के ये शब्द हैं- (१) आर्यान् विजानीहि ये च दस्यवः, (२ — ३) बर्हिष्मते शासत्, अव्रतान् रन्धय, (४) शाकी भव, (५) यजमानस्य चोदिता, (६) ते ता विश्वा सधमादेषु चाकन।

पाठक इस रीतिसे मंत्रोंद्वारा अपने आचरण के लिये बोध प्राप्त करें। वेद के मंत्रोंसे मनुष्योंके व्यवहार में बोध इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। (३)

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढयो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः।
अधा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।

ऋग्वेद. १। ९४। ९

हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले प्रभो! (वधैः) वधके साधन-भूत शस्त्रोंसे (दुःशंसान्) दुष्ट (दूढयः) दुर्बुद्धिवालों का (अपजहि) मार। जो (दूरे वा ये अन्ति वा) दूर हैं अथवा जो पास हों तथा (ये के च) जो कोई (अत्रिणः)सर्वभक्षक स्वार्थी हैं। उन सब को दण्ड दे। (अधा) पश्चात् (यज्ञाय गृणते) यज्ञ करनेवाले स्तोताको (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर। हे प्रभो! तेरी (सख्ये) मित्रतामें (वयं मा रिषाम) हम नष्ट नहीं होंगे।

हे ईश्वर ! दुष्ट दुर्जनों को, जो पास हों वा दूर हों, एकदम हम से दूर कर दे । स्वार्थी खुदगर्ज केवल अपने पेट भरने वाले ही जो हैं उनको भी योग्य दण्ड दे । तथा जो यज्ञ कर्ता है उसकी उन्नति का मार्ग सुगम कर । हे प्रभो ! हम तुम्हारी मित्रतामें रहेंगे तो कभी नष्ट नहीं होंगे ।

इस मंत्रसे व्यवहार का बोध इस प्रकार लिया जाता है-(१) दुष्टों को अपराध के योग्य दण्ड देना चाहिये, (२) स्वार्थी स्वयंभोगी लोगों को भी योग्य मार्गपर लाना चाहिये, (३) सत्कर्मी पुरुषार्थी जो हों उनकी उन्नति का मार्ग सुगम करना चाहिये, (४) जो मनुष्य ईश्वर की भक्ति करते हों उनका कभी नाश नहीं होगा । यहां पाठक देख लें कि किस वेदवाक्य का कौनसा अर्थ होता है और उससे भावार्थ तथा बोध कैसा प्राप्त किया जाता है।

(४)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥

ऋग्वेद. ३ । ५३ । २१

हे (इन्द्र) प्रभो ! (अद्य) आजही (बहुलाभिः ऊतिभिः) अनेक रक्षणोंके साथ (नः) हमारा रक्षण कर । हे (मघवन्) धनवान् ! हे शूर ! हम सबको (श्रेष्ठाभिः) श्रेष्ठताओंके साथ (यात्) आगे (जिन्व) बढाओ। (यः नः द्वेष्टि) जो हम सब का द्वेष करता है उसको (अधरः सस्पदीष्ट) नीचे दबाओ। हम सब (यं उ द्विष्मः) जिसका द्वेष करते हैं (तं उ) उसको (प्राणः जहातु) प्राण छोड देवे ॥

हे ईश्वर ! हमारी रक्षा कर । हे ऐश्वर्यमय प्रभो ! हम सबको श्रेष्ठ गुणोंके साथ आगे बढाओ । जो अकेला हम सबका निष्कारण द्वेष करता है इस कारण जिसका हम सब द्वेष करते हैं वह हमसे दूर हो ।

सूचना ।

पाठक यहां प्रथम मंत्रोंके पद अलग अलग करना सीखें। तत्पश्चात् उन पदोंका अन्वय करें। अन्वयके पश्चात् स्वयं अर्थ करने का यत्न करें। और यदि अर्थ नहीं हुआ तो फिर यहां दिया हुआ अर्थ पढकर ठीक अर्थ लगावें। इस प्रकार प्रयत्न के साथ अध्ययन करेंगे तो वे बहुत उन्नति प्राप्त कर सकते हैं।

(५)

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥

ऋग्वेद. ५ । ९ । ६

पद- तव । अहं । अग्ने । ऊतिभिः । मित्रस्य । च । प्रशस्तिभिः द्वेषः+युतः । न । दुरिता । तुर्याम । मर्त्यानाम् ।

अन्वय- हे अग्ने ! मित्रस्य तव प्रशस्तिभिः ऊतिभिः द्वेषः+युतः न मर्त्यानां दुरिता तुर्याम ।

अर्थ- हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले ईश्वर ! (मित्रस्य तव) तू जो मित्र उसकी (प्रशस्तिभिः ऊतिभिः) प्रशंसनीय रक्षणों से सुरक्षित होकर (द्वेषः+युतः न) द्वेष युक्त लोगोंके समान अहित करनेवाले (मर्त्यानां) मनुष्योंके (दुरिता तुर्याम) दुष्ट कर्मोंसे दूर होकर सुरक्षित होंगे ।

भावार्थ- हे ईश्वर ! तू हमारा मित्र है और हमारा उत्तम संरक्षण करता है । तेरे अद्भुत संरक्षणसे युक्त होते हुए हम दुष्ट-मनुष्योंके कर्तूतों से अपने आपको बचायेंगे, क्योंकि जो मनुष्य तेरी रक्षामें आगया है उसको डरानेवाला इस जगत् में कौन हो सकता है ?

" अग्नि " शब्द आग का वाचक है, परंतु अग्निको भी जिसने बनाया उसका भी नाम वेदमें " अग्नि " ही होता है ।

" न " शब्द निषेध, नकार अर्थमें आता है, परंतु वेदमें "इव" (समान) के अर्थमें आता है।

पाठक इसप्रकार मंत्रोंके अर्थ लिखनेका यत्न करें। मंत्रोंको कंठभी करते जांय। ऐसा करने से उनको बडा लाभ हो सकता है।

पाठ ४

वैदिक स्वर।

वेदमंत्रों के अक्षरों के ऊपर और नीचे जो रेषाएं होती हैं उनको स्वर कहते हैं और उनके भेद उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं इस विषयमें इससे पूर्व बताया जा चुका है। इन रेषाओं के अनुसार ऊपर अथवा नीचे आघात करके मंत्राक्षरोंका उच्चारण किया जाता है अथवा वैसा करना चाहिये, अन्यथा कभी कभी अर्थमें भी विपरीत परिणाम होता है।

उदात्त स्वर के लिये कोई चिन्ह लिखा नहीं होता है अर्थात् साधारणतया स्वरचिन्ह रहित अक्षर उदात्त समझना योग्य है। अनुदात्त स्वरका चिन्ह अक्षर के नीचे रेषा (-) ऐसी दी जाती है और स्वरित चिन्हकी रेषा अक्षरके सिरपर ऊपर खडी (।) ऐसी रहती है। प्रायः प्रत्येक शब्दमें एक स्वरको छोड कर शेष सब स्वर अनुदात्त होते हैं-

अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अष्टाध्यायी. ६।१।१५८

" पदमें एक स्वरको छोडकर शेष स्वर अनुदात्त होते हैं।"

उदात्त का उच्च उच्चारण, अनुदात्तका नीच भागमें दबा हुआ उच्चारण और दोनों का संयुक्त उच्चारण स्वरित स्वरका होता है-

उच्चैरुदात्तः । नीचैरनुदात्तः ।
समाहारः स्वरितः ॥ अष्टाध्यायी १ । २ । २९-३१

उदात्तका उच्चारण उच्च, अनुदात्त का नीच और स्वरित का उच्चारण मिश्रित होता है ।

यद्यपि ऐसा कहा है तथापि इससे सब बातोंका स्पष्टीकरण नहीं होता है । इस लिये इसका अधिक सुबोध विवरण करना चाहिये । पाठक स्मरण रखें कि वेदमंत्रोंका उच्चार करते समय इन स्वरचिन्होंकी ओर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है, अशुद्ध स्वरोच्चार से मंत्रका भाव बदल जाता है, इस विषय में व्याकरण शिक्षा का वचन देखने योग्य है-

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह । शिक्षा. ४९

" स्वर और वर्णके बुरे उच्चार के कारण मंत्र अपने योग्य अर्थ को प्रकट नहीं कर सकता । " तथा-

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
तद्वद्वर्णाः प्रयोक्तव्याः ० ॥ शिक्षा ।

" शेरणी जैसी अपने बच्चोंको अपने जबडेमें पकडकर ले जाती है, परंतु बच्चोंको दांत नहीं लगाती, उसी प्रकार संभाल कर अक्षरोंका उच्चारण करना चाहिये । '

इत्यादि सब कथन इस लिये कहा गया है कि अक्षरोंका उच्चारण योग्य रीतिसे किया जावे । इसी लिये ऐसा कहा है कि योग्य गुरुके पास से वेद सीखना चाहिये । स्वरका गलत उच्चार करने से " इन्द्रशत्रु " पद का बिलकुल उलटा अर्थ होता है, यह उदाहरण भी शिक्षाग्रंथ में इसीलिये दिया है । इत्यादि वर्णन से पाठक जान गये होंगे कि वैदिक भाषामें स्वरोंका महत्त्व कितना है ।

उदात्त अनुदात्त और स्वरित ये स्वर अथवा इनके स्वर चिन्ह केवल स्वरोंके साथ ही संबंध रखते हैं, इनका व्यंजनोंके साथ कोई संबंध नहीं है यह बात पाठकोंको विदित ही है।

प्रत्येक शब्दमें एकसे अधिक उदात्त स्वर नहीं होता है यह सर्व साधारण नियम इससे पूर्व बताया ही है। सामासिक शब्दोंमें कई स्थानोंपर एकसे अधिक उदात्त स्वर रहते हैं। येह सब बातें ध्यानमें लेनेसे शब्दोंके नऊ भेद होते हैं यह पाठकों के ध्यानमें आ जायगा। ये भेद यहां दिये हैं-

१ अंतोदात्त- जिसमें अंतभागमें उदात्त स्वर होता है। जैसा- "अग्निः"

२ आद्युदात्त- जिसमें प्रथम स्वर उदात्त होता है। जैसा- "सोमः"

३ उदात्त- केवल उदात्त स्वर युक्त शब्द। जैसा- "प्र"

४ अनुदात्त- अनुदात्त स्वर युक्त शब्द। जैसा- "वः"

५ नीच स्वरित-निम्न स्वरसे उच्चारा जानेवाला स्वरित स्वर वाला शब्द। जैसा- "वीर्यं"

६ मध्योदात्त- मध्य स्वर जिसमें उदात्त होता है। जैसा- "हविषा"

७ स्वरित- उदात्त और अनुदात्त इन दोनों स्वरोंके धर्मों का संयोग जिसमें होता है, ऐसे स्वरयुक्त शब्द। जैसा- "स्वं"

८ द्व्युदात्त- जिसमें दो उदात्त स्वर होते हैं। जैसा-"बृहस्पतिः"

९ त्र्युदात्त- जिसमें तीन उदात्त स्वर होते हैं। जैसा- "इन्द्राबृहस्पती"

अनुदात्तके नीचे (—) ऐसी रेषा होती है, स्वरितके सिर पर (।) ऐसी रेषा खडी होती है और उदात्त के लिये कोई चिन्ह नहीं होता है।

इनमें स्वरित स्वरके बहुतसे भेद हैं और उनके नाम भी प्रत्येक भेद के लिये अलग अलग हैं। जैसा- एकश्रुति, श्रचयः, सन्नत्तर, अनुदात्ततर इत्यादि स्वरित स्वर के अनेक भेद हैं। इन सब स्वरों के विषयमें प्रथमतः सामान्य नियम बताकर पश्चात् विशेष स्पष्टीकरण करेंगे।

किस शब्दमें कौनसा स्वर उदात्त, कौनसा अनुदात्त और कौनसा स्वरित हो, इस विषयमें परिपाठी का ही नियम सर्वतोपरि शिरोधार्य होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। तथापि वैय्याकरणो लोगोंने इस विषयका सूक्ष्म निरीक्षण करके कुच्छ नियम बनाये हैं। इन नियमों को अपवाद हैं तथापि कुछ साधारण दृष्टिके लिये ये नियम पर्याप्त हैं-

१ नियम पहिला—शब्दके एक स्वरको छोडकर शेष स्वर अनुदात्त होते हैं।

२ नियम दूसरा—शब्दमें यदि एक ही स्वर होगा तो वह स्वर उदात्त रहता है। जैसा-" गौः, ग्मा, क्ष्मा, भूः, जाः, शं, प्सु, धीः, आ, भाः, कः, यः, मा, तत्, यत्, ये " इत्यादि शब्द एक स्वरवाले हैं इसलिये इनका स्वर उदात्त है।

इस नियम का अपवाद यह है कि अस्मत् और युष्मत् शब्दके जो रूप " मा, त्वा, ते, मे, नः, वः " इत्यादि होते है उनमें एक स्वर होनेपर भी ये अनुदात्त हैं। तथा " चित्, इ, सीं, त्वः "

इत्यादि अव्यय यद्यपि एक स्वर वाले हैं तथापि ये अनुदात्त है। तथा " स्वः " इत्यादि एक स्वर वाले शब्द स्वरित हैं। इन अपवादोंको छोड दिया जाय तो उक्त नियम बडे व्यापक समझने योग्य हैं। यहां तक हमने एक स्वरवाले शब्दोंका विचार किया, अब दो स्वर अथवा अधिक स्वर वाले शब्दों का विचार करना है। इस विचार से पूर्व कुछ वैदिक शब्द सिद्धीके नियम ध्यानमें धरने चाहियें--

१ निरुक्तकार तथा कई व्याकरण शास्त्रज्ञ विद्वान मानते हैं कि वेदके शब्द यौगिक हैं अर्थात् धातुसे प्रत्यय लगकर बने हैं। " नाम च धातुजमाह। " अर्थात् नाम धातुसे बने हैं। जैसा अग्नि शब्द " अग् " धातुसे " नि " प्रत्यय लगकर तथा वह्नि शब्द " वह् " धातुसे " नि " प्रत्यय लग कर बना है। इसी प्रकार अन्य शब्द अन्य धातुओं और अन्य प्रत्ययोंके योगसे बने हैं।

इससे अनुमान हो सकता है कि धातु और प्रत्यय इनके स्वर का अनुसंधान करनेसे शब्द का स्वर निश्चित हो सकता है। बहुत अंशमें यह सत्य है। यद्यपि इस नियम को भी बहुत अपवाद हैं तथापि यह सर्व साधारण नियम माना जा सकता है। भगवान् पाणिनी मुनिने धातु पाठमें धातुके स्वर दिये हैं और व्याकरणमें प्रत्ययोंके स्वर भी दिये हैं। यदि धातु और प्रत्ययके स्वर समझ में आगये तो उनसे बनने वाले पदके स्वर समझमें आ सकेंगे, परंतु इस के लिये भी बडे अपवादक नियम हैं उनका विचार आगे करेंगे।

—○—

पाठ ५

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रों का अध्ययन कीजिये-

(१)

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्॥

ऋग्वेद. ६। १। ८

पद-विशां। कविं। विश्पतिं। शश्वतीनां। निऽतोशनं। वृषभं। चर्षणीनां। प्रेति इषणिं। इषयन्तं। पावकं। राजन्तं। अग्निं। यजतं। रयीणाम्।

अन्वय-शश्वतीनां विशां कविं विश्पतिं नितोशनं चर्षणीनां वृषभं प्रेतीषणिं इषयन्तं पावकं रयीणां यजतं राजन्तं अग्निं (स्तुमः)।

अर्थ-(शश्वतीनां विशां कविं) शाश्वत प्रजाओं का कवि अर्थात् वाणीका प्रेरक, (विश्-पतिं) प्रजापालक, (निऽतोशनं) शत्रु-नाशक (चर्षणीनां वृषभं) मनुष्योंके बलोंका वर्धक, (प्रेतीषणिं) प्रेरक (इषयन्तं) अन्नादिकी सिद्धता करने वाला (पावकं) पवित्रता करनेवाला (रयीणां यजतं) धनोंका दाता (राजन्तं अग्निं) प्रकाशमय तेज के देवकी हम प्रशंसा करते हैं॥

भावार्थ- अग्निको भी उष्णता देने वाला ईश्वर है, वह सब प्रजाओं को वाक्शक्ति देता है, वही सब का पालनकर्ता है, वही दुष्टोंको दूर करता है, वही मनुष्योंके बलोंकी वृद्धि करता है, सब को उन्नतिके मार्ग पर चलाता और सबको अन्न आदि देता है, वही सबको पवित्रता करता है और सबकी शोभा बढाता है। वही एक देव हम सबको नमस्कार करने योग्य है।

(२)

नाना ह्य १ ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ऋग्वेद. ६ । १४ । ३

पद- नाना । हि । अग्ने । अवसे । स्पर्धन्ते । रायः । अर्यः । तूर्वन्तः । दस्युं । आयवः ॥ व्रतैः । सीक्षन्तः । अव्रतम् ।

अन्वय-अग्ने ! अर्यः नाना रायः अवसे स्पर्धन्ते । आयवः दस्युं तुर्वन्तः व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः ।

अर्थ—हे (अग्ने) तेजस्विता के देव ! (अर्यः) शत्रुके (नाना रायः) नाना प्रकारके धन (अवसे स्पर्धन्ते) अपनी रक्षाके लिये बडी स्पर्धा कर रहे हैं । (आयवः) मनुष्य (दस्युं) शत्रुको (तुर्वन्तः) नष्ट करते हुए अपने (व्रतैः) व्रताचरणोंसे (अ-व्रतं) धर्म नियमोंका पालन न करने वाले मनुष्यको (सीक्षन्तः) पराभूत करते हुए आगे बढते हैं ।

भावार्थ- हे ईश्वर ! शत्रुके नाना प्रकारके धन अपने बचावके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु उनका प्रयत्न अब निष्फल है । क्यों कि हमारे मनुष्य शत्रुका पराभव करते हुए अपने शुद्ध धर्माचरणों से अधर्मिकों को हटाते हैं । अर्थात् हमारे नियम पालन करने वाले लोगोंके सामने शत्रु ठहर नहीं सकते । हे ईश्वर ! यह तुम्हारी हमपर बडी कृपा है ।

(३)

सुवीरंरयिमाभर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो । ऋग्वेद. ६ । १६ । २९

पद- सुवीरं । रयिं । आ-भर । जातवेदः । वि चर्षणे । जहि । रक्षांसि । सुक्रतो ।

अन्वय-हे जातवेदः विचर्षणे ! सु-वीरं रयिं आभर । हे सु-क्रतो ! रक्षांसि जहि ।

अर्थ-हे (जात-वेदः) सबके ज्ञाता ! हे (वि-चर्षणे) सर्व साक्षी ईश्वर ! (सु वीरं रयिं) उत्तम वीरों से युक्त धन को हमें (आ भर) दो और हे (सु-ऋतो) उत्तम कर्म करने वाले ! (रक्षांसि जहि) दुष्टोंका नाश कर।

भावार्थ—हे ज्ञानी सर्वसाक्षी ईश्वर ! हमें ऐसा धन दो कि जिसके साथ उत्तम वीर रहें। तथा हे उत्तम कर्म करने वाले ईश्वर ! क्रूर कर्म करने वाले दुष्टोंको दूर कर ॥

इस मंत्रमें " सु-वीरं रयिं आभर " ये शब्द प्रयोग महत्त्व रखते हैं। धन ऐसा चाहिये कि जिसके साथ वीरता भी वसती हो। अर्थात् वीरता के साथ जो धन रहता है वही सुरक्षित रहता है। जिस धनके साथ वीरता नहीं रहती वह सुरक्षित नहीं रहता। यह मंत्र बोध देता है कि अपने धनकी सुरक्षितता के लिये प्रत्येक मनुष्य अपने में वीरता बढावे। अशक्त मनुष्योंका धन कोई भी छीन सकता है।

(४)

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

ऋग्वेद. ६ । ४७ । १२

पद-इन्द्रः । सु-त्रामा । स्व-वान् । अवोभिः । सु-मृळीकः । भवतु । विश्व-वेदाः । बाधतां । द्वेषः । भयं । कृणोतु । सु वीर्यस्य । पतयः । स्याम ।

अन्वय-सुत्रामा स्ववान् सुमृळीकः विश्ववेदाः इन्द्रः अवोभिः भवतु । द्वेषः बाधतां । अभयं कृणोतु । सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।

अर्थ- (सु- त्रामा) उत्तम रक्षक, (स्व-वान्) आत्मिक शक्तिसे युक्त, (सुमृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला। (विश्व-वेदाः) सर्वज्ञ, (इन्द्रः) प्रभु अपनी (अवोभिः) संरक्षक शक्तियोंके साथ

हमारा सहायक (भवतु) होवे। वह (द्वेषः बाधतां) द्वेष करने वालों को दूर करे। (अभयं कृणोतु) हमें निर्भय करे। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम शौर्य के स्वामी बनें।

भावार्थ— परमेश्वर हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला है, उसमें विलक्षण आत्मिक शक्ति है, वही सबको सुख देनेवाला है और सर्वज्ञ भी वही है। वह अपनी रक्षक शक्तियों से हमारी रक्षा करे, द्वेष भाव दूर करे, हमें निर्भय करे। हम उसकी कृपासे शौर्य धैर्य वीर्यादि गुणों के स्वामी बनें।

(५)

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु॥

ऋग्वेद. ६। ४७। १३

पद—तस्य। वयं। सुमतौ। यज्ञियस्य। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम। सः। सु-त्रामा। स्व-वान्। इन्द्रः। अस्मे। आरात्। चित्। द्वेषः। सनुतः। युयोतु॥

अन्वय— तस्य यज्ञियस्य सुमतौ भद्रे सौमनसे च वयं स्याम। सः सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु॥

अर्थ— (तस्य यज्ञियस्य) उस पूजनीय परमेश्वर की (सुमतौ भद्रे सौमनसे च) सुमति और उत्तम मन के अंदर (वयं स्याम) रहेंगे। अर्थात् हम ऐसा आचरण करेंगे कि हमारे विषय में उसका मन सदा प्रसन्न रहेगा। (सः) वह (सु-त्रामा) उत्तम रक्षक और (स्ववान्) आत्म शक्तिसे युक्त (इन्द्रः) प्रभु है वह (अस्मे आरात् चित्) हमारे पाससे और दूरसे भी (द्वेषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको (सनुतः) अंदर ही अंदरसे (युयोतु) नष्ट करे॥

भावार्थ- परमेश्वर परम पूज्य है। हम ऐसा आचरण करेंगे कि उसका मन हमारे विषयमें सदा प्रसन्न रहेगा और उसकी दया हमपर बरसती रहेगी। वह प्रभु ही हमारा उत्तम रक्षक, अप्रतिम आत्मिक बलसे युक्त और सबसे श्रेष्ठ है। इस लिये हम उस की प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देवे।

सूचना।

पाठक इस प्रकार पद अन्वय पदार्थ और भावार्थ स्वयं करने का यत्न करें। यदि यत्न करनेपर न बना तब उतनी ही सहायता यहां के पद पदार्थोंसे लें। यदि पाठक इस प्रकार स्वावलंबन करते जांयगे तो उनकी वेदमंत्रों का अर्थ बनानेमें बडी उन्नति होगी।



पाठ ६

वैदिक स्वर।

भगवान पाणिनिमुनिने अपने धातुपाठमें करीब दो हजार धातु दिये हैं और ये धातु दस गणोंमें विभक्त किये हैं। इन धातुओंमें कौनसा धातु उदात्त और कौनसा अनुदात्त है यह सब उन्होंने दे रखा है।

इसी प्रकार शब्द सिद्धिके प्रत्यय भी उदात्त अनुदात्त या स्वरित, जैसे हैं वैसे बताये हैं।

धातु और प्रत्यय से शब्द बनता है। इसलिये धातु का स्वर और प्रत्ययका स्वर यदि विदित हुआ तो शब्द का स्वर समझमें आनेमें कोई रुकावट नहीं हो सकती। बहुतसे स्वर इस रीतिसे स्वयं निश्चित हो जाते हैं। देखिये-

अग् + नि = अग्नि

वह् + नि = वह्नि

ये शब्द सिद्ध हुए। इनमें " अग् और वह् " ये दोनों धातु उदात्त हैं तथा " नि " प्रत्यय भी उदात्त ही है। अर्थात् यहां धातु और प्रत्यय भी उदात्त ही हैं। इसलिये यह शब्द केवल उदात्त ही होना चाहिये था, परंतु यहां और एक नियम ऐसा है कि प्रातिपदिक- शब्द- का अंत्य स्वर उदात्त रहता है, इस नियम के अनुसार इन शब्दोंका अंतिम स्वर उदात्त रहा और " अग्नि " वह्निः " ये शब्द स्वरसहित इस प्रकार बन गये। यद्यपि इन शब्दोंके केवल पद स्थितिमें ये ऐसे स्वर होते हैं तथापि जिस समय इनका उपयोग मंत्रोंमें होता है उस समय भी आगे पीछेके शब्दोंके संबंध से इन स्वरोंमें परिवर्तन हुआ करता है। इसी कारण शब्द मंत्रमें रहने के समय उसका स्वर अन्य होता है और मंत्रके पद लिखनेके समय उसका स्वर अलग होता है। यह सब बात स्पष्ट रीतिसे दर्शानेके लिये एक मंत्र यहां लेते हैं-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥

ऋग्वेद० १ । १ । १

यह मंत्र ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है। अब इसके पद देखिये-

अग्निम् । ईळे । पुरः ऽ हितम् । यज्ञस्य । देवम् ।
ऋत्विजम् । होतारम् । रत्नऽधातमम् ॥

पाठक मंत्र के स्वर और पदों के स्वरोंमे जो फरक हुआ है वह यहां देखें। पद पाठके पदोंके स्वर मंत्रमें जानेपर बदलते हैं। इस विषयका विचार यह है-

१ " अग्निं " शब्द पहिला है। इसका " अग् " धातु उदात्त है, " नि " प्रत्यय भी उदात्त है। परंतु उदात्त धातुके परे उदात्त प्रत्यय आनेसे शब्द " अन्त्योदात्त " बन गया। अर्थात् पहिला स्वर अनुदात्त बना और अन्त्यस्वर उदात्त रहा और " अग्निं " यह रूप बन गया।

२ " ईळे " क्रियापद है, क्रियापद प्रायः अनुदात्त ही होते हैं। इस नियमको अपवाद भी हैं, उस का विचार पीछेसे किया जायगा।

३ " पुरः हितम् " इस पदमें पु अनुदात्त है, रः उदात्त है, हि स्वरित है और त अनुदात्त है। यह अनुदात्त होते हुए भी त अक्षरके नीचे रेषा नहीं है, इसका कारण यह है कि यह त स्वरित स्वर के पश्चात् आगया है और बीचमें और कुछ भी नहीं है। इसका नियम यह है कि- स्वरित स्वर के पश्चात् यदि अनुदात्त स्वर आगया तो वह उदात्ततर किंवा सन्नतर कहलाता है और उसके लिये कोई चिन्ह नहीं होता है। इसका नाम एकश्रुति भी होता है।

४ " यज्ञस्य " इस पदमें " य और स्य " ये वस्तुतः अनुदात्त हैं, परंतु अनुदात्तका चिन्ह य के नीचे है और स्य के नीचे वैसा चिन्ह नहीं है। उदात्त के पीछे अनुदात्त आगया तो वह स्वरित होता है, इस नियमके अनुसार स्य स्वरित बन गया है।

५ " देवम् " शब्दमें दे अनुदात्त है और उसका चिन्ह उसके नीचे है। व उदात्त है, उदात्तके लिये कोई चिन्ह नहीं होता, यह पाठक जानते ही हैं।

६ " ऋत्विजम् " इसमें " यज्ञस्य " के अनुसार ही समझना चाहिये। अर्थात् ऋ अनुदात्त, ज भी अनुदात्त है, परंतु वह उदात्त त्वि के पीछे आनेसे स्वरित बन गया है।

७ " होतारम् " इस पदमें हो उदात्त है, ता अनुदात्त है, परंतु वह उदात्तके पश्चात् आनेसे पूर्ववत् स्वरित बन गया है और उसके पीछेका र अनुदात्त है, परंतु यह अनुदात्तके पीछे आनेसे इसको अनुदात्ततर कहा जाता है।

८ " रत्न - धा - तमम् " यह शब्द है, इसमें रत्न ये दो अनुदात्त हैं। धा उदात्त है। इस उदात्तके पश्चात् अनुदात्त त आगया है इसलिये उदात्त के पीछे आनेवाला अनुदात्त स्वरित होता है, इस नियमके अनुसार वह त स्वरित हुआ है और उसके पश्चात् का म अनुदात्ततर हुआ, वास्तवमें यह अनुदात्त ही है।

यहां तक पदों के स्वरोंके विषयमें विवरण हुआ। यह विवरण पाठक वारंवार पढें और जब तक ठीक समझमें आ जावे तब तक मननपूर्वक पढते जांय। ऐसा करने से ही यह विषय ठीक समझमें आ सकता है। अब पुनः दृढीकरणार्थ स्वरोंके नियम यहां देते हैं—

१ स्वरोच्चारणमें कालमर्यादाके न्यून और अधिक होनेसे स्वरके " ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत " ये तीन भेद होते हैं।

२ स्वर के आघात के भेद से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये भेद होते हैं, उदात्त का आघात मुखके उच्च भागमें, अनुदात्त का नीच भागमें और स्वरित का दोनों भागोंमें होता है।

३ अनुदात्त स्वर का चिन्ह अक्षरके नीचे रेषासे बताया जाता है। उदात्त के लिये कोई चिन्ह नहीं है और स्वरित का चिन्ह अक्षर के सिरपर खडी रेषा से बताया जाता है।

४ प्रायः शब्द में एक स्वरको छोड कर शेष सब स्वर अनुदात्त होते हैं!

५ शब्दमें यदि एक ही स्वर रहा तो वह प्रायः उदात्त होता है।

६ वेदके शब्द यौगिक हैं अर्थात् वे धातु और प्रत्यय लगकर बने हैं।

७ धातुके स्वर धातुपाठमें बताये हैं और प्रत्ययके स्वर व्याकरणमें बताये हैं। दोनों के मेलसे शब्दका स्वर बहुत करके निश्चित होता है।

८ प्रायः पद का अन्त्य स्वर उदात्त रहता है।

९ साथ साथ दो स्वरित चिन्ह (अर्थात् सिरपर खडी रेषा के चिन्ह) कभी नहीं आते। अनुदात्तके चिन्ह साथ साथ अधिक भी आते हैं।

१० उदात्त के परे उदात्त आनेसे अन्त्य उदात्त रहता है और पीछे का अनुदात्त बनता है।

११ सब क्रियापद प्रायः अनुदात्त होते हैं।

१२ स्वरित के परे अनुदात्त आगया तो उस अनुदात्त के लिये नीचे स्वर चिन्ह नहीं लगाया जाता।

१३ उदात्त के पीछे अनुदात्त आगया तो वह स्वरित बन जाता है।

इस समय तक इतने नियम दिये हैं। येह सब नियम विवरण के साथ और उदाहरणके साथ दिये हैं। इस लिये पाठक इनका मननपूर्वक अभ्यास करेंगे तो यह स्वर की बात उनके ध्यानमें आजायगी। आशा है कि पाठक इस का अध्ययन विशेष प्रयत्नके साथ करेंगे।

पाठ ७

इस पाठमें निम्न लिखित मंत्रोंका अध्ययन कीजिये-

(१)

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँ रभि ष्याम् ॥ ऋग्वेद ७ । १ । १३

पद— पाहि । नः । अग्ने । रक्षसः । अ-जुष्टात् । पाहि । धूर्तेः । अररुषः । अघ-आयोः । त्वा । युजा । पृतना-यून् । अभि । स्याम् ॥

अन्वय-हे अग्ने ! अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि । अररुषः धूर्तेः अघायोः नः पाहि । त्वा युजा पृतनायून् अभिष्याम् ॥

अर्थ- हे (अग्ने) तेजस्वी ईश्वर ! (अजुष्टात्) हीन (रक्षसः) राक्षसों से (नः पाहि) हम सब की रक्षा कर॥ (अ ररुषः धूर्तेः) अनुदार धूर्त (अघ-आयोः) पापीसे हमारा (पाहि) बचाव कर । (त्वा युजा) तेरे साथ रहते हुए हम (पृतनायून्) सेना लेकर चढाई करने वाले शत्रुका (अभिष्याम) हम पराभव करेंगे ॥

भावार्थ-हे ईश्वर ! दुष्ट, दुर्जन, धूर्त, धोखेबाज, पापी इस प्रकार के लोगोंसे हमारा बचाव कर । तेरी कृपा हमपर रही तो हम सब प्रकारके शत्रुओं का पराभव कर सकेंगे ।

(२)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव
तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ ऋग्वेद. ८ । ६१।१३

पद-यतः । इन्द्र । भयामहे । ततः । नः । अभयं । कृधि । मघवन् । शग्धि । तव । तत् । नः । ऊतिभिः। वि । द्विषः । वि । मृधः। जहि ।

अन्वय- हे इन्द्र ! यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि । हे मघवन् ! शग्धि । तव ऊतिभिः नः द्विषः मृधः च वि वि जहि ।

अर्थ-हे (इन्द्र) प्रभो ! (यतः भयामहे) जहांसे हमें भयों होता है (ततः) वहांसे (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) अभय कर । हे (मघवन्) धनसंपन्न प्रभो ! तू शग्धि शक्तिमान हो, इसलिये (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकी शक्तियों द्वारा (नः द्विषः) हमारे द्वेषकर्ताओं का तथा हमारे (मृधः) हिंसक का (वि वि जहि) विशेष पराभव कर ।

भावार्थ-हे परमेश्वर ! हमें निर्भय कर, किसी भी दिशा से हमें भय प्राप्त न हो । तू समर्थ है इसलिये तेरी रक्षाकी शक्तियों द्वारा हम सुरक्षित हो गये तो हमें किसी सेभी भय नहीं हो सकता। क्यों कि तूही हमारे शत्रुओं, द्वेषकर्ताओं और हिंसकों का नाश करेगा और तेरी रक्षासे सुरक्षित होकर हम सदा विजयी होते रहेंगे ।

(३)

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः । आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ ऋग्वेद. ८ । ६१ । १६

पद-त्वं । नः । पश्चात् । अधरात् । उत्तरात् पुरः । इन्द्र । नि । पाहि । विश्वतः । आरे । अस्मत् । कृणुहि । दैव्यं । भयं । आरे । हेतीः । अदेवीः ।

अन्वय-हे इन्द्र ! त्वं पश्चात्, अधरात्, उत्तरात्, पुरः च विश्वतः च नि पाहि । दैव्यं भयं अस्मत् आरे कृणुहि । अदेवीः हेतीः आरे ॥

अर्थ- हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वं) तू (पश्चात्, अधरात्, उत्तरात्) पीछेसे, नीचेसे, ऊपरसे (पुनः विश्वतः च) आगेसे और सब ओर से हमारी (नि पाहि) रक्षा कर । तथा (दैव्यं भयं) दैविक भयको (अस्मत् आरे) हम सबसे दूर (कृणुहि)

कर तथा (अदेवीः हेतीः) राक्षसी शस्त्र भी हम सबसे (आरे) दूर रहें।

भावार्थ— हे ईश्वर ! तू हम सबका सब ओर से रक्षण कर, हमें सब ओर से निर्भय बना। विद्युत्पात् अवर्षण आदि दैवी आपत्ति हम सबसे दूर रहे और अन्य विपत्तियां भी हमसे दूर रहें।

(४)

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात्पात्वंहसः॥ अथर्व० ६।५५।२

पद— यत्। इन्द्र। ब्रह्मणस्पते। अपि। मृषा। चरामसि। प्रचेता। नः। आंगिरसः। दुरितात्। पातु। अंहसः।

अन्वय— हे इन्द्र ! ब्रह्मणस्पते ! यत् अपि मृषा चरामसि दुरितात् अंहसः आंगिरसः प्रचेताः नः पातु॥

(५)

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥ ऋग्वेद. १। २५।२०

पद— त्वं। विश्वस्य। मेधिर। दिवः। च। ग्मः। च। राजसि। सः। यामनि। प्रति। श्रुधि॥

अन्वय— हे मेधिर ! त्वं विश्वस्य दिवः ग्मः च राजसि। स त्वं यामनि प्रति श्रुधि॥

अर्थ—हे (मेधिर) बुद्धि प्रदाताः ईश्वर ! (त्वं) तू (विश्वस्य दिवः ग्मः च) सब द्युलोक और भूमिका (राजसि) राजा है। वह तू हमारी (यामनि प्रतिश्रुधि) प्रार्थना श्रवण कर।

भावार्थ— हे बुद्धिप्रदाता ईश्वर ! तूही संपूर्ण जगत् का सच्चा एक राजा है। वह तू हमारी प्रार्थना श्रवण कर।

(६)

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः । ऋ. १ । २७ । ३

पद— सः । नः । दूरात् । च । आसात् । च । नि । मर्त्यात् । अघायोः । पाहि । सदं । इत् । विश्व-आयुः ।

अन्वय— हे ईश्वर ! सः त्वं दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् विश्वायुः सदं इत् नः नि पाहि ।

अर्थ— हे ईश्वर ! (सः त्वं) वह तू (दूरात् च आसात् च) दूरसे और पाससे (अघ-आयोः मर्त्यात्) पापी मनुष्य से (विश्व-आयुः सदं इत्) सब आयुभरमें सदा सर्वदा (नः) हम सबकी (नि पाहि) रक्षा कर ।

(७)

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ऋग्वेद. ८ । ९८ । ११

पद— त्वं । हि । नः । पिता । वसो । त्वं । माता । शत-क्रतो । बभूविथ । अधा । ते । सुम्नं । ईमहे ॥

अन्वय-- हे वसो शतक्रतो ! त्वं हि नः पिता च त्वं माता बभूविथ । अधा ते सुम्नं ईमहे।

अर्थ— हे (वसो) सबके निवासक (शतक्रतो) सैंकडों सत्कृत्य करने वाले ईश्वर ! (त्वं हि नः पिता) तू हि हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू माता होता है। (अधा) इसलिये हम सब (ते सु-म्नं)तेरे उत्तम विचार को (ईमहे) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ— हे ईश्वर ! तू ही हम सबका पिता और माता है, इसलिये तेरी दया ही हम चाहते हैं ।

सूचना ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके अर्थ लगानेका यत्न करें । इस ढंगसे प्रयत्न करनेसे उनकी मंत्रार्थ लगाने में प्रगति शीघ्र हो सकती है। जहां तक हो सकता है वहां तक यत्न करके पाठक मंत्रों को कण्ठ करनेका भी पुरुषार्थ करें ।

पाठ ८

वैदिक स्वर ।

पूर्व पाठोंमें बहुत सा वैदिक स्वरोंका विचार हुआ है । प्रत्येक पदके स्वरका भी विचार किया है । अब वेही पद मंत्रमें किस प्रकार आगये और उनके स्वर किस कारण बदले हैं इसका विचार करना है । देखिये वही मंत्र—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋग्वेद १।१।१

१ इसमें पहिला अ अनुदात्त है और उसका चिन्ह उसके नीचे आया है ।

२ दूसरा अक्षर ग्नि उदात्त है इसलिये उसको कोई चिन्ह नहीं है ।

३ तीसरा अक्षर मी है । यह वास्तवमें अनुदात्त है, परंतु यह उदात्त के पश्चात् आगया है, इसलिये नियमानुसार स्वरित हुआ । (नियम १३ देखिये) इस नियमके अनुसार स्वरित होने के कारण इसके सिर पर स्वरितका चिन्ह खडी रेषा आगया है ।

४ चतुर्थ अक्षर ळे अथवा डे अनुदात्त है, परंतु यह अनुदात्त के पश्चात् आया है इसलिये इसको अनुदात्ततर कहते हैं। अनुदात्त होनेसे इसके लिये कोई चिन्ह नहीं है।

५ पंचम अक्षर पु अनुदात्त है और उसका चिन्ह उसके नीचे है। यह अक्षर भी पूर्व नियमानुसार अनुदात्त के पीछे आनेके कारण अनुदात्ततर होना चाहिये था, परंतु उसके परे रो उदात्त आनेके कारण पु अक्षर उदात्त ही रहा है।

६ छठां अक्षर रो उदात्त है, इसलिये उसके साथ कोई चिन्ह नहीं लगा।

७ सातवां अक्षर हि पूर्ववत् स्वरित हुआ है जिसका चिन्ह उसके सिर पर खडा है।

८ आठवां अक्षर तं पूर्ववत् अनुदात्ततर है। इसलिये उसका कोई चिन्ह नहीं है।

९ नवम अक्षर य अनुदात्त है जिसका चिन्ह उसके नीचे है।

१० दशम अक्षर ज्ञ उदात्त है इसलिये उसका कोई चिन्ह नहीं है।

११ ग्यारहवां अक्षर स्य स्वरित है उसका स्वरित चिन्ह उसके सिरपर खडा है।

१२ बारहवां अक्षर दे अनुदात्त है। स्य स्वरितके आगे दे अनुदात्त आनेसे वास्तवमें वह अनुदात्ततर होना चाहिये था, परंतु उसके आगे उदात्त व आनेके कारण वह अनुदात्त ही रहा और उसको अनुदात्तका नीचे चिन्ह लगा है।

१३ तेरहवां अक्षर व उदात्त है, इसलिये उसको कोई चिन्ह नहीं है।

१४ चौदहवां अक्षर मृ अनुदात्त है। उदात्त व के आगे आनेके कारण पूर्वोक्त स्य के समान स्वरित होना चाहिये था। परंतु आगे

उदात्त अक्षर त्वि आनेके कारण स्वरित नहीं बना और अनुदात्त ही रहा, इसलिये उसके नीचे स्वर आगया है।

१५ पंद्रहवां अक्षर त्वि उदात्त है। इस कारण उसके लिये कोई स्वर चिन्ह उसके साथ नहीं है।

१६ सोलहवां अक्षर ज अनुदात्त है, परंतु वह उदात्तके पीछे आनेसे स्वरित चिन्ह उसके सिर पर लग गया है।

१७ सतरहवां अक्षर हो है। यह उदात्त है, इसलिये कोई चिन्ह उसको नहीं लगा।

१८ अठारहवां अक्षर ता अनुदात्त है परंतु यह उदात्तके पीछे आनेके कारण स्वरित बना है। जिस कारण उसके सिरपर स्वर लगा है।

१९उन्नीसवां अक्षर र अनुदात्त है परंतु वह पूर्वोक्त प्रकार अनुदात्ततर हुआ है और इसकारण उसको कोई स्वरचिन्ह नहीं लगा।

२० वीसवां र भी उसी प्रकार अनुदात्ततर है।

२१ इक्कीसवां त्न अनुदात्त है, आगे धा उदात्त आनेके कारण इसके नीचे स्वर चिन्ह लगा है।

२२ बाइसवां अक्षर धा उदात्त है, इसलिये चिन्ह रहित है।

२३ तेईसवां अक्षर त पूर्वोक्त कारण ही स्वरित बना और उसका चिन्ह उसके सिरपर खडा रहा।

२४ चोवीसवाँ अक्षर म पूर्वोक्त प्रकार ही अनुदात्ततर है इसलिये उसको कोई स्वर चिन्ह नहीं लगा।

इस विवरण से पाठ कों को पता लग जायगा कि स्वरित स्वर कहां बनता है और अनुदात्तत्तर कहां होता है।

समास में स्वर

समास में स्वरोंका कुछ हेर फेर होता है। इसविषय का सामान्य नियम ऐसा है--

❀

१ पद में एक स्वर को छोड कर सब अन्य स्वर अनुदात्त होते हैं। इसलिये समासमें संमिलित हुए पदों के कैसे भी स्वर हुए तौभी उनका समास बनने पर उनमेंसे एक का ही उदात्त अवशिष्ट रहता है और शेष स्वर अनुदात्त होते हैं।

२ समासों में सामान्यतः नियम यह है कि अन्य समासों में उत्तर पद अपना स्वर स्थिर रखता है और पिछले पद के स्वर अनुदात्त होते हैं तथा बहुव्रीहि समास में ही पूर्वपद अपना स्वर स्थिर रखता है और पिछले पदों के स्वर अनुदात्त बन जाते हैं।

३ तत्पुरुष समासों में भी प्रायः पूर्ववत होता है।

४ कृदन्त और उत्तरपद समासों में भी पूर्वपद का उदात्त स्थिर रहता है और उत्तर पद का स्वर बदल जाता है।

पूर्वोक्त मंत्रमें "पुरो-हितं" और "रत्न-धा-तमं" ये पद समास हैं। पूर्वोक्त नियमों के अनुसार "पुरः" शब्दका उदात्त बदला नहीं, परंतु "हितं" पद ही अनुदात्त रहा। वस्तुतः "पुरः" और "हितं" ये दोनों शब्द अन्तोदात्त हैं तथापि पूर्वोक्त नियम के अनुसार पहिले पद का स्वर स्थिर रहा और दूसरे पद के सब स्वर अनुदात्त बने, परंतु उदात्त के पीछे अनुदात्त आने से "हि" स्वरित चिन्ह वाला बन गया।

"रत्न-धा-तमं" शब्दमें तीन भाग हैं। इसमें पहिला "रत्न" शब्द आद्युदात्त है, परंतु आगे धा धातु आनेसे और उपपद पूर्व तत्पुरुष समास बनने से रत्नधा शब्द अन्तोदात्त बनगया और "तम" प्रत्यय स्वयं अनुदात्त है, इस के त का स्वरित पूर्व नियम के अनुसार बन गया और म अनुदात्ततर हो गया। इस के नियम पहिले बताये ही हैं।

अब और नियम देखिये—

(१) संबोधन के शब्द तथा क्रियापद के शब्द वाक्यों में प्रायः

अनुदात्त रहते हैं। परंतु यदि ये वाक्य के या मंत्रपादके प्रारंभ में आगये तो उसके स्वर अन्य नियमानुसार हो जाते हैं।

(२) उदात्त और अनुदात्त स्वरोंके संधि होनेपर उदात्त स्वर की प्रधानता रहती है। जैसा — "आ + इह" इस का संधि उदात्त स्वर युक्त "एहि" ऐसा होता है।

इस प्रकार सामान्य नियम हैं। पाठक यदि इनका विचार वारंवार मनन करके करेंगे तो उनको स्वर विषयक अत्यावश्यक ज्ञान प्राप्त होगा। यह विषय थोडा कठिण है तथापि यहां अति-सुगम बनाकर लिख दिया है, वारंवार पढनेसे पाठकों के समझमें आ जायगा।

पाठ १

इस पाठ में निम्न लिखित मंत्रों का अभ्यास कीजिये-

(१)

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः॥ ऋग्वेद १।२७।८

पद - नकिः। अस्य। सहन्त्य। पर्येता। कयस्य। चित्। वाजः। अस्ति। श्रवाय्यः।

अन्वय - हे सहन्त्य! वाजः श्रवाय्यः अस्ति। अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः।

अर्थ - हे (सहन्त्य) बलवान् ईश्वर! तेरा (वाजः) बल (श्रवाय्यः अस्ति) प्रशंसनीय है (अस्य कयस्य चित्) इस का (पर्येता) उल्लंघन करनेवाला (नकिः) कोई भी नहीं है।

भावार्थ - परमेश्वर सब बलवानों में बलवान है इस लिये उसकी शक्ति प्रशंसाके योग्य है। इसको उल्लांघने वाला अर्थात् इसकी शक्ति को दबानेवाला कोई नहीं है।

(२)

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रऊती॥
ऋग्वेद १।१००।१५

पद- न । यस्य । देवाः । देवताः। न । मर्ताः । आपः । च । न । शवसः । अन्तं । आपुः । सः । प्ररिक्वा । त्वक्षसा । क्ष्मः । दिवः । च । मरुत्वान् । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ।

अन्वय -- यस्य शवसः अन्तं देवाः देवताः न, मर्ताः न, आपः च न आपुः, स मरुत्वान् इन्द्रः दिवः क्ष्मः च त्वक्षसा परिक्वा नः ऊती भवतु ॥

अर्थ -- (यस्य शवसः) जिस ईश्वरके बलका (अन्तं) अन्त देव या देवता (न) न प्राप्त कर सकते, (मर्ताः न) मनुष्य भी न प्राप्त कर सकते तथा (आपः च न आपुः) जल भी नहीं प्राप्त कर सकते । (सः मरुत्वान् इन्द्रः) वह प्राण शक्तिसे युक्त इन्द्र (दिवः क्ष्मः च) द्युलोक और पृथ्वी लोक को (त्वक्षसा परिक्वा) बलसे पूरित करने वाला ईश्वर (नः ऊती भवतु) हम सबका रक्षण करने वाला होवे ।

भावार्थ -- परमेश्वर की शक्ति इतनी अगाध है कि उस शक्ति का अंत कोई देव देवता मनुष्य या अन्य कोई भी नहीं पा सकता। वह जीवनशक्ति से परिपूर्ण ईश्वर जो कि द्युलोक और पृथ्वि लोक को अपनी शक्तिसे परिपूर्ण कर रहा है, वह हम सब की उत्तम रक्षा करे ।

(३)

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे
महिमा पृथिव्याः । नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति
न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ ऋग्वेद ६।१८।१२

पद— प्र । तुवि-द्यु—म्नस्य । स्थविरस्य । घृष्वेः । दिवः । ररप्शे । महिमा । पृथिव्याः । न । अस्य । शत्रुः । न । प्रतिमानम् । अस्ति । न । प्रतिष्ठिः । पुरुमायस्य । सह्योः ।

अन्वय- तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा दिवः पृथिव्याः प्र ररप्शे । न अस्य शत्रुः । न प्रतिमानं अस्ति । पुरुमायस्य सह्योः प्रतिष्ठिः न ।

अर्थ- (तुवि- द्युम्नस्य) अत्यंत तेजस्वी (स्थविरस्य) स्थिर अथवा पुराण पुरुष और (घृष्वेः) दुष्टताको पीसनेवाले ईश्वर की (महिमा) महिमा (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवी लोक के भी (प्र ररप्शे) बाहर फैला है। (न अस्य शत्रुः) इसका कोई शत्रु नहीं है, (न अस्य प्रतिमानं) न इसकी कोई प्रतिमा या उपमा है । इस (पुरु-मायस्य) अनंत प्रज्ञावाले और (सह्योः) शक्तिवाले ईश्वर के लिये भी कोई दूसरा (प्रतिष्ठिः न) आधार नहीं है। अर्थात् यही सब का आधार है ।

भावार्थ-ईश्वर अत्यंत तेजस्वी दुष्टता का नाश करनेवाला और बडा पुराण पुरुष है। उसकी महिमा सब जगत् में फैली है। इसका कोई शत्रु नहीं और ना ही इसकी कोई उपमा है। इस अनंत शक्ति वाले ईश्वरको छोडकर और कोई दूसराआधार किसीकोनहींहै।

(४)

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋग्वेद १ । २६ । ३

पद- सः । नः । पिता । इव । सूनवे। अग्ने । सु- उपायनः। भव। सचस्व । नः । स्वस्तये ।

अन्वय- हे अग्ने! सः त्वं सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव । नः स्वस्तये सचस्व ।

अर्थ- हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले प्रभो! (सः त्वं) वह तू (सूनवे

पिता इव)पुत्रके लिये पिताके समान (नः)हम सबके लिये (सु-उपायनः) उत्तम प्राप्त होने वाला (भव) हो। (नः) हम सब को (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) हमारे साथ रह ।

भावार्थ- हे प्रकाश देनेवाले प्रभो! जैसा पिता पुत्रका सहायक होता है वैसा तू हम सबका सहायक हो और हमारा कल्याण करने के लिये हमें सहायक हो।

(५)

आ हि ष्मा सूनवे पिताऽपिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ऋग्वेद १ । २६ । ३

पद- आ । हि । स्म । सूनवे । पिता । आपिः । यजति । आपये। सखा । सख्ये । वरेण्यः ।

अन्वय और अर्थ-- जिस प्रकार (पिता सूनवे) पिता पुत्रके लिये (आपिः आपये) बंधु बंधु के लिये तथा (वरेण्यः सखा सख्ये) श्रेष्ठ मित्र मित्र के लिये (आ यजति स्म) सहायता करता है उस प्रकार हे ईश्वर ! तू हमारी सहायता कर ।

भावार्थ-जैसा पिता पुत्र की, भाई भाई की, और मित्र मित्र की सहायता करता है उस प्रकार ईश्वर हमारी सहायता करे ।

(६)

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥
ऋग्वेद १ । ३१ । १०

पद— त्वं । अग्ने । प्रमतिः । त्वं । पिता । असि । नः । त्वं । वयस्कृत् । तव । जामयः । वयम् । सं । त्वा । रायः । शतिनः । सहस्रिणः । सुवीरं । यन्ति । व्रतपां । अदाभ्य ।

अन्वय— हे अग्ने! त्वं प्रमतिः, त्वं नः पिता असि। त्वं वयस्कृत् । वयं तव जामयः । हे अदाभ्य ! सुवीरं व्रतपां त्वा शतिनः

सहस्रिणः रायः संयन्ति ॥

अर्थ- हे (अग्ने) प्रकाश देनेवाले ईश्वर! तू (प्रमतिः) विशेष बुद्धिमान हो, तू हम सबका पिता है। तूहि (वयः कृत्) जीवन देनेवाला है। (वयं) हम सब (तव) तेरे (जामयः) बंधु हैं। हे (अदाभ्य) न दबनेवाले ईश्वर! (सुवीरं व्रतपां) उत्तम वीरोंसे युक्त नियमोंके पालक तुझ ईश्वर के प्रति सौ और सहस्रों (रायः) धन (संयन्ति) इकट्ठे होते हैं।

भावार्थ-हे ईश्वर! तू हि सब में अत्यंत बुद्धिवान् हो, तूहि हम सबका पिता हो और तू हि सबको जीवन देनेवाला हो। तेरे ही हम सब भाई हैं। हे न दब जानेवाले ईश्वर! तू अनेक वीरताके गुणोंसे युक्त तथा उत्तम नियमोंके चलाने वाले हो, इसलिये सैंकडों धन तेरे पास इकट्ठे होते हैं। अर्थात् जो इस प्रकार उत्तम नियमोंका पालन कर्ता और वीरताके गुणोंसे युक्त होगा वह भी अनेक धनोंको अपनेपास धारण कर सकेगा और धनी बन जायगा।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अध्ययन करें।



पाठ १०

(१)

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः॥ ऋग्वेद १।८।४

अन्वय— वयं त्वया युजा अस्तृभिः शूरेभिः (च सह) वयं पृतन्यतः सासह्याम।

अर्थ— हम सब तेरे (युजा) साथ और (अस्तृभिः) अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले (शूरेभिः) शूरवीरों के साथ हम (पृतन्यतः) सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका (सासह्याम) पराभव करेंगे।

भावार्थ- हे ईश्वर! तेरी सहायता लेकर तथा शूर वीरोंकी सहायता लेकर हम शत्रुका पराजय करेंगे।

(२)

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्य मिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्यारुज ॥

ऋग्वेद. १ । १०२ । ४

अन्वय और अर्थ- हे (मघवन्) धनैश्वर्य संपन्न प्रभो ! (त्वया युजा) तेरे साथ युक्त हो कर (वयं वृतं जयेम) हम सब घेरने वाले शत्रुका पराभव करेंगे । (भरे भरे) हरएक प्रकारके युद्ध में (अस्माकं अंशं) हमारे भागका (उदव) उत्तम रक्षण कर। हे (इन्द्र) प्रभो ! (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (वरिवः सुगं कृधि) धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर । (शत्रूणां वृष्ण्या) शत्रुओं के बल (प्र रुज) नष्टभ्रष्ट कर ॥

भावार्थ-हे प्रभो ! तेरी कृपा प्राप्त करके हम सब प्रकारके शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे । हे ईश्वर ! हर एक प्रकारके युद्धमें हमारा कर्तव्यका भाग हमसे ठीक प्रकार हो जावे, ऐसी उन्नति हमारी हो जावे । हे देव ! हमें सब प्रकारके धन सुगमतासे प्राप्त हों और तेरी प्रेरणासे हमारे शत्रुओंके बल पूर्णतासे नष्ट भ्रष्ट कर और सदा हमारा विजय हो ।

(३)

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः । अवस्यवो धीमहि प्रशस्ति सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ ऋ. २ । ११ । १२

अन्वय और अर्थ-हे (इन्द्र) प्रभो ! हम सब (विप्राः) ज्ञानी लोग (त्वे अभूम) तेरे अंदर अर्थात् तेरे होकर रहेंगे ॥ (ऋतया सपन्तः) सीधे मार्गसे व्यवहार करते हुए (धियं वनेम) बुद्धि और कर्म की सिद्धि प्राप्त करेंगे हम सब (अवस्यवः) अपनी रक्षा करने का यत्न करने वाले लोग (प्रशस्ति धीमहि) तेरे गुणोंको मनमें धारण करेंगे । (सद्यः) तत्कालही (ते रायः)

तेरे धनके (दावने) दान के लिये हम योग्य (स्याम) होंगे ॥

भावार्थ- हे ईश्वर ! हम सब लोग तेरे बनकर रहेंगे। सीधे मार्गसे चल कर कर्म की सिद्धि प्राप्त करेंगे। हम सब अपनी रक्षा करने का पुरुषार्थ करेंगे और सदा तेरे शुभगुणोंका ध्यान करेंगे। ऐसा करनेसे तेरे धन के दानके भागी हम सब बन जांयगे।

(४)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत ॥
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥
ऋग्वेद २ । १२ । १

अन्वय तथा अर्थ-- (यः प्रथमः देवः) जो आदि देव (जातः एव) प्रकट होते ही (मनस्वान्) मनन शक्तिसे श्रेष्ठ होकर अपने (क्रतुना) कर्मसे (देवान् पर्यभूषत) देवोंको शोभायुक्त करता रहा। (यस्य शुष्मात्) जिसके बलसे (रोदसी।) द्युलोक और पृथ्वी लोक (अभ्यसेतां) कांपती हैं (सः) वही देव, हे (जनासः) लोगो ! (नृम्णस्य मना) मानसिक शक्तिके महत्त्वसे युक्त (इन्द्रः) प्रभु है।

भावार्थ-आदिदेव परमेश्वर पहलेसेही महती मानस शक्तिसे युक्त है और अपने प्रशंसनीय कर्मसे संपूर्ण देवताओंको सशोभित करता है। इसका बल इतना है कि उसके भयसे द्यावा पृथिवी भी कांपते हैं ॥ हे लोगो ! यही सब जगत् का एक प्रभु है। और वही सबसे अधिक समर्थ है।

(५)

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युद्धयमाना अवसे हवन्ते ॥
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥
ऋ. २ । १२ ॥ ९

अन्वय और अर्थ-हे (जनासः) लोगो ! (यस्मात् ऋते) जिसके

विना (जनासः न विजयन्ते) लोग विजय प्राप्त नहीं कर सकते, (युद्धयमानाः) लडते हुए (अवसे) रक्षा के लिये (यं हवन्ते) जिसकी प्रार्थना करते हैं और (यः) जो (विश्वस्य प्रति मानं बभूव) विश्वका नमूना हुआ है तथा जो (अ-च्युत-च्युत्) न हिलने वालों कोभी हिला देनेकी शक्ति रखता है, हे लोगो वही इन्द्र है॥

भावार्थ-- परमेश्वरकी कृपा न हुई तो लोगोंका कभी विजय नहीं हो सकता, इसलिये युद्धके समय सब लोग उसी की प्रार्थना मनोभावनासे करते हैं, जो प्रभु जगत् बननेके लिये आदर्शरूप हुआ वह इतना समर्थ है कि वह बडे प्रभावशालियों को भी हिला देता है, परंतु उसको हिलाने वाला कोई नहीं है।

(६)

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः॥

ऋ. ६।८।६

अन्वय के साथ अर्थ-हे(वैश्वानर अग्ने) विश्वके संचालक प्रकाश देनेवाले देव ! (अस्माकं मघवत्सु) हमारे धनिकों में (सु-वीर्यं) उत्तम वीरता से युक्त(अ-नामि)कभी न नम्र होने वाला (अ-जरं क्षत्रं) कभी क्षीण न होने वाला क्षात्र तेज (धारय) धारण कर। (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षा शक्तियोंसे (वाजं) बल प्राप्त करके (वयं) हम सब (शतिनं सहस्रिणं) सौ और हजारों सैनिकोंके साथ हमला करनेवाले शत्रु को (जयेम) पराजित करेंगे।

भावार्थ-हे जगत् के संचालक प्रभु! हमारे में जो धनी हैं, उनमें उत्तम शौर्य वीर्य, धैर्य, स्थापन कर अर्थात् धनी लोग शूर हों और डरपोक न हों, कभी किसीसे वे न डरें और अपनी रक्षा करने में वे समर्थ हों। तेरी रक्षाओंसे सुरक्षित हो कर ही हम बडे बलवान् बनेंगे और सैन्यके साथ हमपर हमला करनेवाले शत्रु-

औंको भी परास्त करेंगे ।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ ऋ. १।११। २

अर्थ - हे (शवसः पते इन्द्र) बलके स्वामी प्रभो ! (ते सख्ये) तेरी मित्रतामें हम (वाजिनः) बलवान् होने के कारण (मा भेम) किसीसेभी नहीं डरते । तू (जेतारं) विजयी और (अ -- पराजितं) कभी पराजित न होनेवाला है इसलिये (त्वां अभि प्र णोनुमः) तुझे ही नमन करते हैं ।

भावार्थ -- हे सर्व समर्थ प्रभो ! तेरी मित्रतासे हम बलशाली होनेके कारण हम किसीसे नहीं डरेंगे । क्यों कि तू सदा विजयी हो और तुम्हारा पराजय कभी नहीं होता । इसलिये हम तेरी ही शरण आते हैं, तेरी ही भक्ति करते हैं और तुझे छोडकर किसी अन्यकी उपासना नहीं करते ।

सूचना

पाठक इस प्रकार मंत्रोंका अर्थ करें । हरएक मंत्र कण्ठ करें, और उसके पद पदार्थ अन्वय और भावार्थ स्वयं करनेका यत्न करें । जहां समझमें न आवे वहाँ ऊपर दिये अर्थकी सहायता लें । इस प्र कार करनेसे उनकी प्रगति वेदविद्यामें शीघ्र होगी ।

पाठ ११

(म. भा. द्रोणपर्व अ. ३६)

सञ्जय उवाच ।

सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥
तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥

अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्धया ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥
आचार्यो हि कृतीद्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः ।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चाऽयुद्धविशारदः ॥ ४ ॥
ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत् ।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥
ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम् ।
अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् ॥
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥
न ममैतद्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् ।
अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ ॥
पितरं चार्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति ।
अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८ ॥
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ॥

सञ्जय उवाच-हे भारत ! धीमतो बुद्धिमतो धर्मराजस्य तद्वचः तद्वचनं श्रुत्वा सौभद्रः सुभद्रापुत्रः यंतारं सारथिनं द्रोणानीकाय द्रोणस्य सैन्याय अचोदयत प्रेरितवान ॥ १ ॥ तेन द्रौपदी पुत्रेण अभिमन्युना " याहि याहि " गच्छ गच्छ इति सञ्चोद्यमानः संप्रेर्यमाणः सारथिस्तु, हे राजन् ! ततः तदनंतरं इदं वचः इदं वचनं अभिमन्युं प्रत्युवाच २ ॥ हे आयुष्मन् अभिमन्यो । पाण्डवैस्त्वयि अयं अतिभार आहितः स्थापितः । बुद्धया क्षणं संप्रधार्य विचार्य ततः तदनंतरं त्वं योद्धुं अर्हसि ॥ ३ ॥ हि आचार्यः द्रोणः कृती कृतकार्यः परमास्त्रे च कृतश्रमः । त्वं च अयुद्धविशारदः न युद्धविशारदः अत्यंतसुखसंवृद्धः च ॥ ४ ॥ ततोऽभिमन्युः प्रहसन् सारथिं इदं वाक्यं अब्रवीत् । हे सारथे ! को नु अयं द्रोणः ? समग्रं संपूर्णं क्षात्रं क्षत्रियबलं वा ॥ ५ ॥ ऐरावतगत अमरगणैः

सह शक्रं इन्द्रं वा, अथवा सर्व भूतगणार्चितं सर्वभूतसुपूजितं ईशानं रुद्रं वा रणमुखे योधयेयम्। अद्य क्षत्रे मे विस्मयो न ॥ ६ ॥ एतत् द्विषत्सैन्यं शत्रुसैन्यं मम षोडशीं कलां न अर्हति। हे सूतज ! मातुलं विश्वजितं विष्णुं प्राप्य ॥ ७ ॥ अपि पितरं अर्जुनं चाऽपि प्राप्य मां भीः न उपयास्यति॥ अभिमन्युः च तां सारथेः वाचं कदर्थीकृत्य ॥८॥ "द्रोणानीकाय याहि, मा चिरं" इत्येव एनं अब्रवीत्॥

ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥
नाऽति हृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।
ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम् ।
तमुद्वीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ॥
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥
ते विंशतिपदे यत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे ।
आसीद्गांग इवावर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १२ ॥
शूराणां युद्धयमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १३ ॥
प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥
तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान्महाबलम् ।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६ ॥
नाना वादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्कृष्टगर्जितैः ।
हुंकारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा ऽगास्तिष्ठेहि मामिति ।
असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि ।
सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥

तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥
ते हन्यमाना विवशा नानालिंगैः शितैः शरैः ।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥

ततः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् सुवर्णालंकारयुक्तान् त्रिहायनान् त्रिवर्षीयान् हयान् अश्वान् आशु संनोदयामास । सुमित्रेण सारथिना द्रोणानीकाय प्रेषितास्ते वाजिनः अश्वाः ॥ १० ॥ हे राजन्! महावेगपराक्रमं द्रोणं अभ्यद्रवन्। तथा यान्तं तं अभिमन्युं उद्वीक्ष्य दृष्ट्वा, सर्वे द्रोणपुरोगमाः तं अभ्यवर्तन्त, पाण्डवाश्च तं अन्वयुः ॥ ११ ॥ ते विंशतिपदे यत्ताः संयत्ताः संप्रहारं प्रचक्रिरे । उदधौ समुद्रे गांगः आवर्त इव मुहूर्तं आसीत्॥१३॥शूराणां युद्धयमानानां इतरेतरं निघ्नतां, हे राजन् ! सुदारुणः तुमुलः संग्रामः प्रावर्तत ॥ १४ ॥ तस्मिन् अतिभयंकरे संग्रामे प्रवर्तमाने द्रोणस्य मिषतः पश्यतः एव आर्जुनिः अभिमन्युः व्यूहं भित्त्वा अभ्यन्तरं प्राविशत् ॥ १५ ॥ तं महाबलं व्यूहमध्ये प्रविष्टं शत्रुसंघान् विनिघ्नन्तं उदायुधाः उद्यतायुधाः हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुः परितः वव्रुः ॥१६॥ नानावादित्रनिःस्वनैः क्ष्वेडितोत्कुष्टगर्जितैः गर्जनैः हुंकारैः सिंहनादैः च "तिष्ठः तिष्ठ" इति निःस्वनैः ॥१७॥ घोरैः हलहला शब्दैः " मा गाः, तिष्ठ, मां पहि, अमित्र ! असौ अहं" इति मुहुः मुहुः वारंवारं प्रवदन्तः ॥ १८ ॥ ब्रंहितैः सृंजितैः हासैः करनेमिस्वनैरपि वसुधां संनादयन्तः आर्जुनिं अभिदुद्रुवुः॥ १९ ॥ शीघ्रयोधी महाबलो वीरः क्षिप्रास्त्रः अभिमन्युः । हे राजन् ! युद्धमर्मज्ञः अभिमन्युः मर्मभेदिभिः नानालिंगैः शरैः आपततां तेषां न्यवधीत् ॥ २० ॥ नानालिंगैः शितैः शरैः विवशाः हन्यमानास्ते वीराः पावकं शलभा इव सुबहुशः अभिपेतुः॥२१॥

—